

बात की बात

परमानन्द एम. ए.







विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन—१६०

बात की बात

(सचित्र)



लेखक :—

परमानन्द शर्म्मा एम. ए.



प्रकाशक :—

विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान,

होशिआरपुर ।

प्रथम संस्करण
२०१६ (1959)
मूल्य १/२५



Printed at
The V. V. R. Institute Press
and published for
The V. V. Research Institute,
By
DEV DATTA Shastri, V.B.,
at Hoshiarpur (India)

प्रकाशक तथा मुद्रक—
देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर,
विश्वेश्वरानन्द वैदिक-शोध-संस्थान
प्रेस, साधु आश्रम,
होशियारपुर (भारत)

बच्चों के लिये ये कहानियाँ

अपनी पूज्य माता जी के नाम—

उन के अबोध बच्चे की ओर से

समर्पित ।

बात की बात

बात की बात में बात बन जाती है। "आप बच्चों के लिये छोटी छोटी कहानियाँ क्यों नहीं लिखते, इनकी बड़ी आवश्यकता है", मेरे प्रिंसिपल श्री जे० एन० दुदेजा ने बातों ही बातों में एक दिन कहा। वे मेरे हितैषी हैं, शुभचिन्तक हैं। उनकी बात मुझे जँच गई। अतः वसन्त के अवकाशों में मैंने एक सप्ताह में ये छोटी छोटी, रोचक कहानियाँ अपने बाल-बन्धुओं के लिये लिख डालीं।

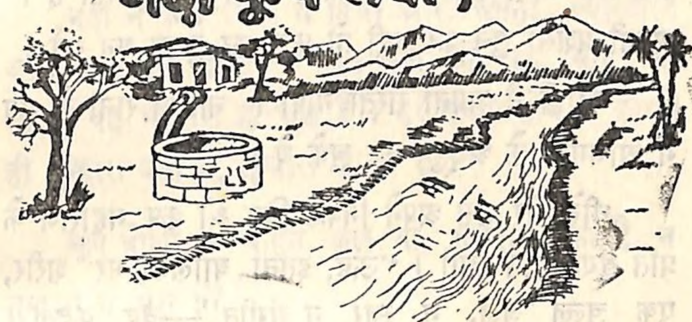
देखने में तो ये नन्ही मुन्ही सादा सी कहानियाँ हैं, परन्तु शिक्षाप्रद होने के नाते न केवल बच्चों, बल्कि जन-साधारण के लिये उपयोगी तथा उपादेय हैं। जहां मेरे बाल-मित्र इन्हें पढ़ कर प्रसन्न होंगे वहां बहुत पढ़े लिखों के लिये भी विचारार्थ पर्याप्त सामग्री मिलेगी।

अभी कुछ ही वर्ष पहले तक हमारे घरों में रात के समय सोने से पहले बड़े-बूढ़े, बच्चों के मनोरञ्जन के लिये ऐसी ही अनेकों कहानियाँ सुनाया करते थे। फलतः, उनमें निहित शिक्षायें हमारे संस्कारों में अपने आप घुल मिल जाती थीं यह एक बहुत ही अच्छी बात थी। आजकल यह रिवाज ही नहीं। इसको पुनर्जाग्रत करना अच्छी शिक्षा की ओर एक सफल प्रयास होगा। यही इस पुस्तिका का उद्देश्य है।

—परमानन्द शर्मा।

विषय-सूची

नदी कूप संवाद



एक थी नदी ; कल-कल छल-छल बहती नदी ; शीतल, निर्मल जल से भरपूर। दिन रात मीठा मधुर राग अलापा करती वह नदिया। वन के हरिण रोज़ उस की भैरवी सुनने आते और जलरूपी चरणामृत पान करके सानन्द लौट जाते।

उस नदी के कई पड़ोसी थे ; परन्तु सब से अधिक निकट था एक कूप। कूप और नदी का घनिष्ठ सम्बन्ध था, स्नेह था, सौहार्द था। बहुत काल तक दोनों अच्छे पड़ोसियों की भान्ति सुख शान्ति से रहे।

एक दिन एक बटोही नदी के किनारे कुछ देर के लिये रुका; उसके शीतल जल में उस ने स्नान किया

और बहुत प्रसन्न हो कर नदी से कहने लगा—"वाह ! क्या निर्मल जल पाया है; कितना ठंडा, कितना मीठा ! कल-कल का संगीत भी तो कानों में अमृत बरसाता है।" अपनी प्रशंसा सुन कर नदी तो फूल कर कुप्पा बन गई।

बटोही ने अपना रास्ता नापा। नदिया रानी के मन में अभिमान के अङ्कुर फूट चुके थे।

धीरे धीरे उसे अपने निकट मित्र श्री कूप महाराज के प्रति घृणा होने लगी। "ऊंह, इतना बालिश्त भर शरीर, एक चुल्लू जल, न स्वर न संगीत"—वह कहती। परिणाम यह हुआ कि उस के मन में द्वेष की आग ने बड़ा उग्ररूप धारण कर लिया। कूप बेचारा मूक; उसे पता ही क्या था ? वह तो पहले ही वर्ष में एकाध बार बात करता था; नदी की चुप से अब वह बात भी न रही।

एक दिन नदी ने कूप की ओर तनिक मुख मोड़ा। कूप बोला—"आओ बहिन, स्वागत।" नदी तो बिगड़ उठी। कहने लगी—"चुप-चुप; तुम कौन हो मुझे बहिन कहने वाले ? मैं तो वन की रानी हूं। मेरा प्रसार कितने योजन तक है ? जानते हो ? चुल्लू भर जल के स्वामी हो कर मेरी बराबरी करते हो ?

कूप ने कहा—"ठीक है, मेरा जल चुल्लू भर है,

परन्तु है तो मीठा जल, प्यास बुझाने वाला जल। मुझे इसी में सन्तोष है।"

नदी ने कोई ध्यान न दिया और अपना व्याख्यान जारी रखते हुए बोली—"जिस जल की तुम बात कर रहे हो वह भी मेरा ही जल है। मेरे समीप होने के कारण ही तुम्हारा जल है, तुम्हारा जीवन है।"

कूप बोला—"बहिन, जल तो भगवान् का है, न तुम्हारा न मेरा।"

नदी ने उत्तर दिया—"चुप रहो; तुम्हारे तो शब्द भी कानों को खा रहे हैं। हाय, हाय, कितनी कर्कश वाणी है तुम्हारी! परन्तु मेरे सुरसंगीत से सारा वन गूंजता है। यदि भगवान् ने तुम्हें मेरी तरह ही जल दिया है तो कंठ भी दिया होता।"

कूप ने कहा—"मेरा संगीत सन्तोष का संगीत है; सन्तोष मूकता सिखाता है; तुम्हारा छिछोरापन बकवाद। तुम दिन रात इत-उत भागती, चिड़-चिड़ करती फिरती हो; यह गाना नहीं, संगीत नहीं, ढोल बजाना है। मैं अपनी आत्मा में सन्तुष्ट रहता हूं। तुम कभी पत्थरों को चाटती हो, कभी वृक्षों के गले मिलती हो, कभी पर्वत की

चापलूसी करती हो। मुझे ऐसा अस्थिर जीवन पसन्द नहीं है।"

लज्जित हो अत्यन्त क्रोध में नदी लौट गई।

आकाश पर मेघ घिर आये थे। देवराज इन्द्र मेघों के अधिपति, वर्षा के स्वामी ऊपर बैठे यह सब सम्वाद सुन रहे थे। वे मन ही मन दुःखी हो रहे थे—मेरे ही दो बच्चे परस्पर लड़ रहे हैं। क्या वे मुझे भूल गये हैं? इस तर्क-वितर्क का प्रयोजन क्या? वे दोनों अपने असली स्वरूप को भूल गये हैं। क्या वे दोनों एक नहीं? क्या वे इस तथ्य को भूल गये हैं?

मूसलाधार वर्षा से जल-प्लावन का समय बँध गया। नदी का जल बढ़ आया; कूप का पानी चढ़ आया। धीरे धीरे चारों ओर इतना पानी फैल गया कि न नदी नदी रही, न कूप कूप रहा। चारों ओर था जल, केवल जल, जल ही जल—; भगवान् तथा उसकी कृतियों की एकरूपता का मूर्त उदाहरण।



सांप की मौत

एक घने जंगल में बड़ का एक बहुत बूढ़ा और विशालकाय वृक्ष था। उस पर रात-दिन सैंकड़ों पक्षियों का बसेरा रहता, और उसकी डाली डाली पर थे अनेकों घोंसले जिन में खग-शाव मीठी नींद सोते, मां की लोरियां सुनते, खुश-गप्पियां लगाते अथवा चीं-चीं करते दाना-दुनका खाते।

प्रातः का समय था। शीतल सुखद समीर वातावरण में सुखद शान्ति का सञ्चार कर रही थी। सूर्य भगवान् का रथ अभी प्राची के प्राङ्गण तक पहुँच नहीं पाया था।

उस मनोहर वातावरण में विहार कर रहा एक पुरुष

सैर करते कराते उसी वट वृक्ष के पास से गुज़रा । वह था प्रकृति का उपासक; सौन्दर्य का पुजारी; कविता-कान्त एक कवि । ब्राह्ममुहूर्त में सारे वन को गुञ्जायमान करता हुआ एक पक्षी का कलगान उसे विशेष भाया । वह कुछ क्षणों के लिये तो मंत्रमुग्ध सा वहीं का वहीं खड़ा रह गया, मूर्ति बना—जैसे कि वह भी उस स्थावर वनस्थली का एक अङ्ग ही हो । खड़े खड़े वह कल्पना की उड़ानें भरने लगा । उस पक्षी का गीत कविवर को साम-गान प्रतीत हो रहा था, और वह विशालकाय वट वृक्ष अपनी लम्बी-लम्बी लटक रही जटाओं के साथ एक तपोवृद्ध ऋषि, एक वयोवृद्ध योगी की न्याईं ।

उसी वृक्ष की एक कोटर में रहता था एक सांप, एक महाविषैला नाग ।

कल सर्प महोदय ने अनेकों पक्षियों के घोंसलों में से अण्डे चुरा-चुरा कर खाये थे । मुफ़्त के माल द्वारा पेट-पूजा करने के पश्चात् वह रात को कुम्भकर्ण की नींद सोया था । अनेकों पक्षियों के प्रातःकालीन कल-रव ने उस को सपनों की दुनिया से जगा दिया । इस प्रकार अपनी निद्रा भङ्ग हुई देख वह क्रोध से तलमला उठा । ठीक उसी क्षण उसके कानों में उस पक्षी के गूंजते हुए स्वर

पड़े, तो वह झुंझला कर कहने लगा—"हूं ऊं—इसी मूर्ख ने मेरी नींद खराब की है। इसे पता नहीं कि मैं तो इस बड़ का स्थायी देवता हूँ ? अभी मज़ा चखाता हूँ धूर्त को।"

सांप सर्र से अपनी कोटर में से निकला और चुपके चुपके चोर की तरह पीछे से जा कर उस ने पक्षी को डस दिया। बेचारे पक्षी की वाणी-वीणा एकदम मूक हो गई, बन्द हो गई स्वर-लहरी और वह क्षण में ही पृथ्वी पर कवि के पैरों में आ गिरा, उस के प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

मृत-पक्षी को देख कवि के मन में करुणा और क्रोध उमड़ पड़े। उमड़ते क्यों न ? वह था कवि और कवि की आंखों के सामने पड़ी थी कविता की लाश, संगीत का शव। वह बहुत दुःखी हुआ। उसी क्षण उसने तनिक ऊपर दृष्टि की तो क्या देखा ?—कोटर में घुसता हुआ यमदूत—वही काला नाग।

सरस्वती तो कवि की जिह्वा पर निवास करती है। उस के मुख से शाप निकला—"ओ पक्षी की हत्या करने वाले सर्प ! तू कला और संगीत का शत्रु है; संगीत ही तो जीवन है; संगीत से सृष्टि की रचना हुई; जीवन उपजा;

तू जीवन का शत्रु है। जा, तेरा अपना जीवन सदैव जान के खतरे में बीते।"

इसके पश्चात् कवि घर लौटा और उसने पक्षी की वेदना पर एक बहुत करुणा-रसपूर्ण कविता लिखी, जिसे सुन कर लोगों के हृदय पसीज जाते। परिणाम यह हुआ कि जहां कहीं किसी को कोई सांप दिखाई देता, वह वहीं उसका वध कर डालता।

तभी से मनुष्य और सांप में शत्रुता है, तब से ही भय के मारे सांप अधिक लुक छिप कर रहते हैं।



एक पक्षी बड़े ही सुख चैन से अपने नीड़ में बैठा हुआ खिड़की में से बाहिर झांक रहा था। हरी भरी घाटी में धान के लहलहाते खेत बड़ी दूर तक फैले हुये थे। अनेक पर्वत-मालायें उस की आंखों के सामने थीं, कइयों की चोटियां तो बहुत ऊंची थीं, मानो आकाश से बातें करती थीं। वह कई बार उन चोटियों तक हो आया था, शौक़ से, खुशी से उड़ानें भरता हुआ। उसे यथार्थ गर्व था अपनी इन असाधारण उड़ानों पर।

एक पर्वतमाला के एक पर्वत-शिखर के पीछे से एक बादल धीरे-धीरे उठा, थोड़ा और ऊपर उठा और धीरे-धीरे एक अच्छा ख़ासा बादल बन गया। अपने बंगले में बैठा

हुआ पक्षी बड़े ध्यान से उस की ओर देख रहा था। उसने मन ही मन कहा—"आज क्यों न उस बादल को ही छू आऊं, वह पर्वत-शिखर तो मेरा रौंदा हुआ है ही।"

फिर थोड़ा हिचकिचाया—"वह सफेद सा टुकड़ा बहुत दूर है क्या?" मन ही मन उत्तर मिला—"अरे नहीं, वह तो है, पर्वत-शिखर के साथ, बिल्कुल जुड़ा हुआ उस चोटी से।"

पक्षी ने नीड़ के वातायन में से ज़रा गर्दन को आगे बढ़ाया, थोड़ा दाएँ बाएँ झांका और तुरन्त एक ही झपट में पर फैला कर आकाश में कूद पड़ा। उसने अपने जाने पहचाने पर्वत-शिखर का रुख़ किया।

वह तेज़ से तेज़ उड़ानें भरता लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जा रहा था। परन्तु ज्यों ज्यों पर्वत-शिखर समीप आता त्यों-त्यों उस का मन बेचैन होता जाता, वह अधीर होता जाता। यह क्या मामला था? ऐसा क्यों था? अरे वह बादल तो पर्वत-शिखर से कुछ दूर प्रतीत हो रहा है, शिखर से दूर?....नहीं, नहीं, शायद बहुत दूर नहीं।

पक्षी ने हिम्मत न हारी। वह आगे ही आगे बढ़ता गया, उड़ता गया, शिखर की ओर। पर्वत-शिखर पर पहुंच कर तो उस का मन अकस्मात् विस्मय से भर गया, स्तब्ध रह गया। बादल शिखर के साथ जुड़ा हुआ नहीं

था; वह तो अगली धार पर था। उस ने फिर निश्चय को दृढ़ किया, थोड़ा धैर्य जमाया और पर फैला कर उड़ पड़ा,—बादल को छूने, अपने लक्ष्य की ओर।

सन्ध्या हो चली थी, पक्षी थक कर चूर हो गया था, परन्तु वह फिर भी उड़ता जा रहा था। जब वह थका हारा अगली धार के शिखर पर पहुंचा तो, हा हन्त! बादल वहां भी न था। वह तो वातावरण में घुल-मिल कर लोप हो गया था।

अपने नीड़ की चिन्ता में निराश पंच्छी उन्हीं पंखों से वापिस उड़ा। उड़ना, जो कि उस का प्राकृतिक स्वभाव था, अब उस के लिये दूभर हो रहा था, उस का पेट फूल रहा था और दिल धौंकनी की तरह बज रहा था। पृथ्वी उसे मानों ज़ोर से अपनी ओर खींच रही थी।

सारी रात घर वाले उस की प्रतीक्षा करते रहे। पक्षी नीड़ में नहीं लौटा। अगले दिन वे उस की तलाश में निकले तो थोड़ी दूर ही धान की एक क्यारी में उस का शव देख कर सब करुण क्रन्दन करने लगे।

प्राणी का लक्ष्य ठोस तथा श्रेयस्कर होना चाहिये। भाप-पानी के बादलों के पीछे भागने से निराशा के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता।



एक गाय अपनी मालकिन से बहुत तंग थी। जब से वह दुधार न रही थी, घर में उस की कोई कद्र न रही थी, न चारा अच्छा मिलता, न कोई समय पर पानी पिलाने ले जाता। उस बेचारी का मन बहुत दुःखित रहता था।

उसी की मालकिन के हां एक कुत्ता भी था, जो कि बहुत वर्षों से उसी घर की चौकीदारी कर रहा था। बूढ़ी तथा दुखिया गाय ने अपनी कहानी कुत्ते से कही और मालकिन की उपेक्षा का चर्चा किया। कुत्ते ने अपना रोना रोया, बोला—"मालकिन का जो धन माल मेरी ही

होश्यारी के कारण सुरक्षित है उस में फूटी कौड़ी भी कभी मेरे ऊपर खर्च नहीं की जाती। मेरी वफ़ादारी का मूल्य—जूठे टुकड़े, बासी पकवान, और कभी कभार खाना पड़ती है मालकिन के डंडे की मार भी।"

अन्त में दोनों ने निश्चय किया कि ऐसे जीवन और ऐसे घर से भाग जायें,—दूर कहीं दूर, और संसार के झंझटों से दूर वन के शान्त वातावरण में शेष जीवन व्यतीत करें, अर्थात् दुनिया को छोड़ संन्यास धारण कर लें।

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार सांयकाल होते ही झुटपुटे के समय कुत्ता आ पहुँचा। गाय भी तय्यार ही बैठी थी। कुत्ते ने जल्दी जल्दी से अपने दान्तों के साथ गाय के रस्से को काटना शुरु किया। गाय को उस रस्से के साथ बहुत मोह था। वह बोली—"मित्र! ठहरो, यह रस्सा तो मुझे बहुत प्यारा है। जब से इस घर में आई हूँ तभी से मेरे साथ है, मेरे सुख दुःख का साथी रहा है यह। मेरी इच्छा है कि कम से कम इसे तो साथ ले जाऊं, और सब कुछ त्याग कर तो जा ही रही हूँ।"

कुत्ते ने पूछा—"तो क्या? जल्दी बोलो ना।"

"इसे काटो मत, गांठ से खोलो और मुझे रिहा कर दो।" गाय ने प्रार्थना के स्वर में उत्तर दिया।

कुत्ते ने वैसा ही किया ।

गाय और कुत्ता सर पर पांव रख कर भागे, ताकि मालकिन के कान में भिनक पड़ने से पहले-पहले नगर से काफी दूर पहुँच जाएँ । गाय भी भाग रही थी और कुत्ता भी भाग रहा था । कुत्ता आसानी से भाग सकता था क्योंकि वह बन्धन-मुक्त था, गाय के गले में उस का रस्सा अभी लटकता था,—उस का अपना रस्सा, मानो मोह की साक्षात् शृंखला ।

एक गली के मोड़ पर एक खम्बे के साथ लैम्प टंगा था और खम्बे के इर्द गिर्द था कांटेदार तारों का एक चौखटा । ज्योंही गायरानी भागती हुई मुड़ी और खम्बे के करीब से गुज़रने लगी, किसी ने एक-दम मानो रस्सा पकड़ कर उसे खैंच ही तो लिया । मालकिन ? अत्यन्त बौखलाहट में उस की नज़र तारों के चौखटे पर पड़ी तो स्तब्ध सी रह गई, क्यों ? उस का रस्सा तारों में फंस गया था, और उसे छुड़वाने की जितनी चेष्टा वह करती, जितने चक्कर इधर उधर झुंझलाहट में काटती, उतनी ही वह और लिपटती जाती, उलझती जाती । कुत्ता तो दृष्टि से ओझल हो चुका था, सहायता कौन करे ।

थोड़ी ही देर में तलाश करती हुई मालकिन भी आ

पहुँची और झट से गाय को पकड़ कर वापिस ले गई।

हा हन्त ! अब बेचारी गाय को बोध हुआ कि केवल रस्से के मोह के कारण ही उस की यह दुर्दशा हुई। जब उसने अपनी मालकिन और घर-बार आदि सब छोड़ दिये थे तो एक तुच्छ सा रस्सा क्यों न छोड़ सकी ?

सांसारिक वस्तुओं के मोह के होते हुये संन्यास अधूरा ही नहीं, बल्कि निरर्थक है, धोका है। सच्चा संन्यास तो मन से मोह दूर करने का ही दूसरा नाम है।

—



एक था वृक्ष और उस के साथ थी लिपटी हुई एक नन्हीं पतली बेल । धीरे-धीरे लता जवान हो गई, उस का क़द काठ बढ़ा, उस पर यौवन का रंग चढ़ा और वह एक रूप-यौवन सम्पन्ना ललना की भान्ति वृक्ष के कन्धों तक ही तो लम्बी हो गई । अपने कोमल कर-कमलों से तरुवर के दोनों कन्धों को छूते हुए उस की आंखों में आंखें डाल कर, वह नित्यप्रति मधुमय प्रेमालाप किया करती । तरुवर भी उस के प्रेम में आनन्द-विभोर रहता ।

धीरे-धीरे वह लता समूचे वृक्ष पर छा गई, मानो वह पूर्णरूप से उस किशोरी के प्रेम-पाश में जकड़ा गया ।

हो। वृक्ष ने अपना यौवन अपना सर्वस्व उस के प्रति न्योछावर कर दिया, समूचा वृक्ष मुर्झा गया।

उसी पेड़ की कोटर में रहते हुए एक सांप ने यह सारा घटना-क्रम देखा तो ईर्ष्या की आग से जल उठा, उसे तो अपनी शक्ति पर गर्व था; अपने बल पर अभिमान था; अपनी विष-भरी पोटली पर नाज़ था। अतः उस ने मन ही मन सोचा—"वाह! क्या मैं इस दुबली-पतली लतिका से कोई कम शक्ति-शाली हूँ? इस नन्हीं सी छोकरी ने तरुवर के गिर्द लिपटकर और उसके पत्तों को सुखा कर अपनी शक्ति दर्शाने की ही तो दुश्चेष्टा की है। अभी मैं इस को नीचा दिखाता हूँ और निकालता हूँ कचूमर इस मूर्ख वृक्ष का भी; हूँह!"

सर्प अपनी खोह से निकला और वृक्ष के तने के गिर्द घेरा डाल कर लिपट गया। परन्तु उस तरुवर का कुछ बिगड़े तो। सांप ने और अधिक ज़ोर लगाया, एक पत्ता भी न गिरा। बेचारा बहुत परेशान हुआ, परन्तु था बड़ा ढीठ वह। उसने ऐड़ी चोटी का ज़ोर लगाया और अपनी पकड़ को दृढ़ किया। दरख्त का बाल भी बांका न हुआ।

वृक्ष और बेल दोनों सांप की धृष्टता, नादानी और मूर्खता पर हँस रहे थे।

जब एक दुष्ट को अपनी शक्ति के प्रयोग से भी इच्छित सफलता नहीं मिलती तो वह और झुंझला उठता है, क्योंकि उस के झूठे गर्व को ठेस लगती है। अतः सांप ने अपनी सारी शक्ति को केन्द्रित करके अन्तिम चेष्टा में वृक्ष को अपनी पकड़ में जकड़ने का प्रयत्न किया। ज़ोर, ज़ोर, और अधिक ज़ोर से····और फिर···· ।

वृक्ष और बेल दोनों मुस्करा रहे थे और बेचारे महाबली सांप की देह दो टुकड़े हुए पृथ्वी पर पड़ी थी।

मूर्ख सर्प नहीं जानता था कि दूसरों पर जो विजय प्रेम और स्नेह द्वारा पाई जा सकती है वह पशु-बल के प्रयोग से कभी नहीं मिल सकती। प्रेम और पशु-बल में बड़ा कौन है ?—निश्चय ही प्रेम।



लालची मेहमान

एक भेड़िया, एक लोमड़ी, एक बन्दर—तीनों में बड़ी गहरी दोस्ती थी। तीनों अपने आप को जङ्गल के बड़े अफसरों में से गिनते थे, यह नहीं कि बाकी जङ्गल के रहने वाले भी उन्हें बड़ा मानते हों। वस्तुतः यह तीन धूर्तों की तिगड़ी थी। तीनों इकट्ठे मिल कर औरों को अपने जाल में फँसाने की योजनायें बनाया करते।

एक दिन उन्हों ने योजना बनाई और निश्चय किया कि चलो, आज कहीं जा कर मेहमानी खायें, बहुत काल से किसी चाय पार्टी या डिनर पर बुलावा ही नहीं आया।

तीनों जङ्गल से निकल खुली घाटी की ओर चल

दिये। सब से आगे धूर्त बन्दर, ताकि वह चहुँ ओर देख-भाल कर सके, और पीछे-पीछे बी लोमड़ी तथा भेड़िया भाई। तीनों बिन बुलाये मेहमान मीज़बान की तलाश में।

अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि मार्ग में एक साधु महात्मा आते हुये दिखाई दिये। बन्दर ने कहा--"लो भाई काम बन गया। साधु महात्मा बड़े सरल स्वभाव वाले होते हैं, जो वर मांगो, देते हैं, अतिथि-सेवा तो इन के महायज्ञों में से एक है। क्यों न इन्हीं महात्मा जी की मेहमानी स्वीकार की जाये।" लोमड़ी बोली—"बन्दर भैय्या! बात तो मुझे भी जचती है।" भेड़िया महाराज ने भी हां में हां मिलाई।

इतने में महात्मा जी भी समीप आ पहुंचे थे। तीनों ने बड़े आदर-पूर्वक उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और साधु महाराज ने उन्हें भूरि भूरि आशीर्वाद दिया। "क्यों आज प्रातः ही किधर का रुख किया है!" उन्हों ने पूछा। लोमड़ी ने तुरन्त चतुराई से उत्तर दिया--"बस महाराज! आप के दर्शनों के लिए ही इधर आये थे।" "तो चलो फिर कुटिया में"—शिष्टाचार के नाते साधु बोले। तीनों महात्मा जी के साथ-साथ उन की कुटिया को चल दिये।

कुटिया पर पहुँच कर महात्मा जी ने इन्हें आसन दिया और आदर सत्कार से बिठाया। "प्रातःकाल का भोजन आज यहीं कीजिये"—साधु जी ने अतिथि-सेवा के विचार से नम्र प्रार्थना की।

बन्दर बोला—"मैं तो निरामिष ब्रह्मचारी, शाक-शस्य खाने वाला जीव हूँ, मेरी तो कोई विशेष चिन्ता न करें आप।"

लोमड़ी और भेड़िया बोले—"आप के पालतू मुर्गों में से केवल एक एक हम दोनों के लिये काफ़ी हैं।"

महात्मा जी ने लोमड़ी और भेड़िये को उन का मुंह-मांगा भोजन भेंट किया, बन्दर ने थाली भर मटर चबा कर मूंछों को ताओ दिया। इस से तो उन सब का लालच और बढ़ा। साधु जी की अतिथि-सेवा देख कर न केवल उन के मुँह में पानी भर आया, बल्कि लार टपकने लगी।

भेड़िया और बी लोमड़ी बोले--कोई भेड़ बकरी भी है इधर कहीं?"

बन्दर ने कहा—मैं तो थोड़े से और मटरों से ही तृप्त हो जाऊंगा, आज-कल वैद्य जी ने परहेज़ बताया हुआ है, सो थोड़ा कम खाता पीता हूँ।"

अतिथि भूखे न लौटें—यह सोच कर महात्मा जी ने एक भेड़ और कुछ मटर अतिथियों के हवाले किये। परन्तु भूखे अतिथियों की पेट की आग शान्त हो तो? साधु महाराज यह भांप गये थे, अतः उन्हों ने जितने भी खाद्य-पदार्थ घर में थे लाकर अपने लालची मेहमानों के सामने रख दिये। देखते ही देखते सब चट।

पेट पर हाथ फेरते हुये भेड़िये ने लोमड़ी की ओर और बन्दर ने उन तीनों की ओर, अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। कुछ क्षण तो सब मौन रहे, फिर कपिराज ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा—"महाराज! थो····थो····ड़े····से म····अ····टर और मिलेंगे?...."

अब तक तो साधु महाराज के सन्तोष का बान्ध भी टूट चुका था। इन बिन बुलाये मेहमानों के लालच को देख क्रोध से लाल हो गये। महात्मा जी कुटिया के भीतर गये और तुरन्त ही लौट कर बोले—"यह देखो, अब तो मेरे पास लकड़ियां काटने वाली केवल यह कुल्हाड़ी ही है।"

छल के पांव नहीं होते। कुल्हाड़ी को देखते ही तीनों मेहमान सिर पर पांव रख कर भागे और ऐसे भागे कि पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं।

———



एक बरगद के वृक्ष की खोह में रहता था—कौन ? एक सांप। वृक्ष के ऊपर रहने वाले अन्य पक्षी उस से भय खाते थे; सब उस के विषभरे डंक से डर कर रहते थे। सो वह तो समझता था अपने आप को तीस-मार-खां; उस बरगद का सर्वे-सर्वा। उस की फुङ्कार मात्र से पक्षी तो क्या वृक्ष के पत्ते तक सहम जाते थे।

वसन्त ऋतु छाई थी। पौधे पौधे पर बहार आई थी। वन में नाना प्रकार के उत्तम उत्तम फूल खिले थे। शहद की मक्खियां खुशी से फूलों का रस चूसतीं, और जहां

स्थान मिलता शहद के छत्ते बनाने में संलग्न हो जातीं।

मधु-मक्खियों के एक ऐसे ही गिरोह ने बरगद के एक तने पर अपना शिविर डाल दिया। देखते ही देखते वहां शहद का एक छत्ता बनना शुरू हो गया। लाखों की संख्या में मधु मक्खियां जातीं, और जङ्गल भर के फूलों से मधु एकत्रित कर अपने छत्ते के भण्डार में उँडेल देतीं।

बर्गद की खोह में बैठे हुए सांप ने जब मधु मक्खियों का गुंजार सुना तो सोचने लगा—"ऐं, यह क्या माजरा है ? मेरे राज्य में किस ने उपद्रव डालने का दुःसाहस किया ? किसी शत्रु की सेना ने आक्रमण तो नहीं कर दिया क्या ?···"। उस ने टिकटिकी लगा कर चारों ओर देखा तो मधुमक्खियों के छत्ते पर दृष्टि पड़ी। उस ने ठीक अनुमान लगाया, हां, उपद्रव-कारियों की सेना वहीं डेरे डाले पड़ी थी। ठीक, सारा शोरो-गुल उन्हीं कमबख्तों की छावनी से उठ रहा था। "मैं इन को अभी मज़ा चखाता हूँ ···।" उस ने ऐंठ कर व्रत साधा।

सांप कोटर में से निकला और चुपके से सरकता हुआ मधु-मक्खियों के छत्ते के समीप पहुँचा। उस ने बड़े ध्यान से उस की ओर देखा, परन्तु चकित ही तो रह गया वह ! शत्रु की संख्या का वह कुछ अनुमान न लगा सका।

केवल एक काले भूरे रंग का सा था शाखा के साथ चिपक रहा और दो चार अबला मक्खियां उस के ऊपर उड़ रही थीं। उस ने ज़ोर से विष-भरी फुङ्कार छोड़ी, परन्तु कोई परिणाम न निकला। सोचने लगा— "अरे, यह तो हिला भी नहीं,.....शायद पहिले ही मरा पड़ा है..... .... ओ....हो.....शायद मेरी फुङ्कार मात्र से परलोक सिधार गया है। ख़ैर, कुछ भी हो, वैरी वैरी ही होता है, मुझे इस का सर्वनाश अवश्य करना चाहिये।"

सांप अपने आप को बरगद का एक-मात्र स्वामी समझता था। उस वृक्ष के एक पत्ते पर भी वह किसी दूसरे का अधिकार कैसे सहन कर सकता था? जैसे वह इतना बड़ा पेड़ भगवान् ने उसी के लिये बनाया हो।

विषैली हुङ्कारें भरता वह सीधा मधु-मक्खियों के छत्ते में घुस गया। तू कौन? मैं ख़ाह-मख़ाह। अगले ही क्षण छत्ते की मक्खियों ने सर्प पर ही छत्ता बना लिया और दम भर में ही क्षत विक्षत हुआ मूर्ख सांप भूमि पर गिर पड़ा—हमेशा की नींद सोने के लिये। दुर्बुद्धि पुरुषों के साहस का यही परिणाम हुआ करता है।

—



पूनो का चान्द अपने पूरे यौवन पर था। उस की चांदी सी सफेद किरणों ने सारी वनस्थली को मानों दूध में नहला दिया था। ऐसे प्रतीत होता था जैसे आकाश का स्वर्ग धरती पर उतर आया हो। छिटकी हुई चाँदनी की शोभा से कौन मोहित नहीं होता ?

जङ्गल का राजा अपनी कछार में से निकला और चान्दनी की अनुपम छटा से मन्त्रमुग्ध हो कर इधर उधर स्वच्छन्द विचरने लगा। वन के पादप, पत्ते, फूल, लताएँ पर्वत, कन्दरायें, सरिता, झरने—सब बहुत भले और सुन्दर प्रतीत हो रहे थे, और यह सब प्रताप था चन्दा

मामूं का। अपने राज्य को इस अलौकिक रूप में डूबा देख सिंह बहुत प्रसन्न हुआ; उस का मन बल्लियों उछल पड़ा। वह कभी वन में चारों ओर फैली हुई चान्दनी को देखता, कभी अपने विशाल साम्राज्य के विविध अङ्गों उपाङ्गों की ओर, कभी चान्दी से चमकते चान्द की ओर।

थोड़ी देर सैर करने के पश्चात् शेर एक स्फटिक शिला पर बैठ गया और मन ही मन सोचने लगा—"मेरे वन की यह सारी शोभा आकाश में चमक रहे उस दूध से सफेद दीप के कारण ही है। अहा! कितना सुन्दर है वह खिलौना सा! क्या ही अच्छा हो यदि मैं उसे पा सकूं। उसे धरती पर ही ले आऊं! अहा फिर तो सारा वन और भी जगमगा उठेगा दिव्य आलोक से!"

सो निकल पड़ा वन का राजा चान्द को लाने! एक अकेले पर्वत -शिखर के पीछे से चन्दा का भोला, स्नेह-भरा मुखड़ा झांक रहा था।

"वह पर्वत-शिखर तो बहुत समीप है"—सिंह ने सोचा। लम्बी लम्बी छलांगे भरता वह उधर लपका। सिंह बहुत तेज भाग रहा था।

पर्वत के आञ्चल में एक छोटी सी झील थी। जब शेर उस झील के तट पर पहुँचा तो सहसा रुक गया।

क्या देखता है कि उस का ध्येय तो उस के चरणों में ही पड़ा है। अन्धे मोह और लालच के पागलपन में जंगल का राजा आकाश के असली चान्द को भूल कर प्रतिबिम्ब पर ही लट्टू हो गया, उसी को असली चान्द समझ, और "पा लिया" "पा लिया" का शोर करते हुये धड़ाम से झील के मध्य में कूद पड़ा।

आज तक वह मूर्ख शेर उस झील की गहराइयों से निकल नहीं पाया; आज तक चन्दा मामा वन के राजा की मूर्खता पर उसी पर्वत-शिखर के ऊपर से हर पूनो को हंसता दीखता है।

जिस का पाप उसी का बाप



एक जंगल में कुछ बढ़ई शहतीरियों को चीरने का काम कर रहे थे। कितनी ही शहतीरियां बिखरी पड़ी थीं वहां। एक दिन एक बन्दर चहलकदमी करता हुआ उधर आ निकला। अगणित संख्या में पड़ी हुई शहतीरियों को देख उस का मन ललचाया।

वह बन्दर था अपने गांव की पंचायत का सरपञ्च; अन्य बन्दरों पर फालतू रौब जमाया करता वह। अपने आप को बड़ा जतलाने तथा अन्य बन्दर भाइयों से ऊंचा

दिखलाने के लिये वह नाना प्रकार के फ़िज़ूल प्रयत्न किया करता। एक प्रकार से वह अपने आपको अपनी बस्ती का छोटा मोटा राजा ही समझता था, समझता भी क्यों न, क्या वह बन्दरों का मुखिया नहीं था ?

बहुत दिनों से वानर-राज को एक सिंहासन की आवश्यकता थी अपने दरबार के वास्ते। बस, आज तो काम ही बन गया ! इतनी शहतीरियां ? बीसियों सिंहासन बन जायें।

"क्यों न हर सायंकाल, जब कोई न देखता हो, एक-आध शहतीर समीप वाले दरया में लुढ़का दिया करूं, और अपने गांव के पास उसे दरया से निकाल अ लगा लिया करूं।"—ऐसे उस ने सोचा।

युक्ति तो उत्तम थी। सायंकाल सूर्यास्त से थोड़ा पहिले, जब सब कारीगर काम बन्द करके अपने अपने घरों को चले गये, तो कपिराज वहां प्रकट हुए।

धूर्त बन्दर ने देखा कि एक शहतीर वहाँ सहारा देकर औन्धा खड़ा किया हुआ था। उसे थोड़ा सा चीर कर बीच में मोटी लकड़ी का एक टुकड़ा दे दिया गया था। "इसी शहतीर को लुढ़काना आसान रहेगा"। बन्दर ने अपने आप से कहा, "और दरया में चलाने के लिये यह लकड़ी का टुकड़ा चप्पू का काम देगा।"

बन्दर ने इधर उधर देखा। कोई देख तो नहीं रहा ? नहीं, कोई नहीं। और लो एक ही धक्के से शहतीर दरया में छप्प से जा गिरा। अगले ही क्षण में एक ही छलांग में बन्दर एक चतुर नाविक की भान्ति उसके ऊपर सवार हो गया। सरिता के जल पर तैर रहा था शहतीर और शहतीर के सिंहासन पर बैठा था वह बन्दर।

थोडी दूर तो शहतीर ठीक चला, परन्तु जब वह तेज़ धाराओं के प्रवाह में पड़ा, तो उस की गति पर काबू पाना कठिन हो गया।

"अब तो चप्पू के प्रयोग से ही काम चलेगा।" —बन्दर ने निश्चय किया। उस ने तुरन्त ही सारा ज़ोर लगा कर शहतीर में से लकड़ी का टुकड़ा खींच लिया और साथ ही अकस्मात् वह बड़े जोर से चीखा, उसकी लम्बी पूंछ शहतीर के दराड में बुरी तरह फंस गई थी।

सरिता के जल पर शहतीर का सिंहासन अब भी बड़े वेग से बह रहा था। परन्तु बन्दरों का राजा सिंहासन पर विराजमान नहीं था, हाँ वह फंसी हुई पूंछ के साथ लटका हुआ शहतीर के नीचे नीचे सरिता की लहरों में डुबकूँ करता बहा जा रहा था। बन्दर का पाप उसी को ले डूबा। किसी ने सच ही तो कहा है, "जिस का पाप उसी का बाप।"



जंगल में एक बहुत बड़ा भालू रहता था। सारे वन-जीव उस के बल का लोहा मानते थे, यहां तक कि शेर भी उस से डरता था और कई बार भालू ने उसे युद्ध में हराया था।

भालू अपनी कन्दरा में से निकल कर धूप तापने के लिये पर्वत की चोटी पर बैठा था। वह निर्भयता से दाँयें बांयें के दृश्य को देख रहा था और चुपचाप बैठा था।

भालू को इस प्रकार आनन्दमय बैठे देख शेर के मन में तो ईर्ष्या उठ खड़ी हुई। बाघ, लोमड़ी और सूअर ने

भी भालू को देखा, उसी प्रकार वे भी द्वेष से जल-भुन गये। चारों ने मिलकर सलाह की कि आज इकट्ठे होकर भालू पर धावा बोल दिया जाये। परन्तु बिल्ली के गले में घण्टी बान्धे तो कौन? मक्कार लोमड़ी बोली, "हमें कोई उत्तम योजना बनानी चाहिये!" सब ने हाँ की।

सब से पहले उन्होंने एक बड़ी खाई खोदी। फिर उसमें तीखे-तीखे काँटे रख दिये। जब भालू पर्वत से नीचे उतरेगा तो अनजाने ही उस खाई में गिर कर हताहत हो जायेगा।

शेर, बाघ, लोमड़ी और सूअर चारों वहां बैठ गये और उन्होंने एक पक्षी को सन्देशवाहक बनाकर भालू को बुला लाने के लिये भेजा। पक्षी ने जाकर भालू को इन सब की ओर से खाने का निमन्त्रण दिया और कहा कि खास उसके लिये उन्होंने अभी अभी एक ताज़ा कुक्कर मारा है। भालू मौन था।

बहुत प्रतीक्षा के बाद भी भालू नहीं आया।

पहला षड्यन्त्र असफल हुआ देख उन्होंने एक नई कहानी घड़ी। वे सब मृतकों की भान्ति पृथ्वी पर लेट गये। उसी पक्षी ने भालू से जाकर कहा, "महाराज! वे तो सब परलोक सिधार गये, परन्तु अपनी जमीन, जायदाद, धन-दौलत सब आपके नाम लगवा गये हैं।

आईये, आप अपनी चीज़ें सम्भालें"।

भालू अब भी मौन था, मानो उसकी चुप्पी कह रही हो, "मैं तुम्हारी सब शैतानी समझता हूँ"। पक्षी निराश लौट आया।

शेर, लोमड़ी, वाघ और सूअर ने एक और युक्ति सोची और फिर वही पक्षी उड़ कर गया उनका सन्देश देने। अब की वार उस ने कहा, "उठिये हजूर यहां से उठ जाईये, आप को शायद मालूम नहीं कि आप जिस पर्वत-शिखर पर बैठे हुए हैं, वह तो एक ज्वालामुखी है; सूचना मिली है कि यह ज्वालामुखी अभी अभी फट जायेगा"।

भालू ने केवल थोड़ा सा मुस्करा दिया, मानो उसकी मुस्कान कह रही थी, "मैं इतना बुद्धु नहीं कि तुम्हारी बातों में आ जाऊँ। जाओ, जाओ; किसी और को उल्लू बनाओ"।

इस प्रकार अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल कर शेर, लोमड़ी, वाघ और सूअर निराशा से हाथ मलते हुए और भालू को गालियाँ बकते हुए चल दिये।

भालू अब भी पर्वत-शिखर पर बैठा धूप ताप रहा था और मुस्करा रहा था।

शत्रु की चिकनी-चुपड़ी बातों में न आकर धैर्य से उसकी चालों को मात कर देना ही चतुराई है।



एक ही थैली के चट्टे बट्टे

नटखट और चटपट नाम के दो बन्दर थे। दोनों गहरे मित्र थे।

एक दिन उन्होंने हनुमान जी की मूर्ति के सामने दोनों हाथ जोड़ और घुटने टेक शपथ ली कि आगे से कभी चोरी न करेंगे।

जब वे मन्दिर से लौट रहे थे, तो उनकी दृष्टि एक अति सुन्दर उपवन पर पड़ी। वृक्षों की शीतल छाया देखकर वे कुछ क्षण विश्राम के लिये वहीं रुक गये। वह उपवन क्या था, मानों फलों का ज़खीरा था। समीप ही

लहरा रहे आड़ूओं के एक वृक्ष पर नटखट और चटपट दोनों की आँखें एक साथ गड़ गईं। नटखट बोला, "चटपट भईया, आड़ू तो बहुत सुन्दर लगे हैं।"

"हाँ भाई खा नहीं सकते, इसलिये और भी सुन्दर हैं"। नटखट बोला।

"खाने की कौन मुआ बात करता है और फिर बाग से चुरा कर खाने की? अभी अभी तो हनुमान जी के सामने वचन देकर आये हैं" — आड़ूओं के पेड़ पर छलांग लगाते हुए नटखट ने कहा। चटपट भी झटपट सामने वाले पेड़ की शाखा पर जा डटा।

आड़ूओं को देखकर दोनों की जीभ से लार टपक रही थी। परन्तु करें तो क्या? प्रण-पालन के बन्धे थे बेचारे। "देख भाई चटपट, मेरा तो जी बेईमान हो रहा है"। "और इधर मेरा भी यही हाल है," चटपट ने उत्तर दिया।

"अच्छा तुम मेरी ओर देखते रहो और मैं तुम्हारी ओर देखता रहूँगा; न तुम तोड़ो, न मैं तोड़ूँगा"। नटखट ने सुझाव दिया।

नटखट के पीछे वाले वृक्ष पर एक गिलहरी ने जो सरसर की तो क्षण मात्र के लिये यह जानने के वास्ते कि

मामला क्या था, पीछे मुड़ कर देखा। चटपट ने तुरन्त उस क्षण का लाभ उठाते हुए एक पका सा आड़ू तोड़ा और ठस मुँह के अन्दर।

जितने समय में चटपट ने फल तोड़ने के लिये मुँह दूसरी ओर किया था, उसी समय नटखट ने भी अवसर क लाभ उठाते हुए एक फल साफ कर डाला था।

अब दोनों ही पहले से भी अधिक चुप बैठे थे। मन ही मन दोनों को हँसी आ रही थी। दोनों ही ने अपने अपने तौर पर चोरी की थी, परन्तु प्रत्येक यह समझता था कि शायद दूसरे को उसकी चालाकी का ज्ञान नहीं है। नटखट ने हाथ से इशारा करते हुए नाक से बोलना शुरु किया, "तुम चोर हो"। चटपट ने उसी प्रकार नाक में बोलते हुये उत्तर दिया, "उ, हूँ, तुम"।

हँसी के मारे दोनों के होंठ खुल गये और दोनों के मुँह में से गिरा एक २ मोटा ताज़ा आड़ू।

और फिर हनुमान जी का नाम लेकर अपना अपना आड़ू खा गये।



जंगल में रहता था एक खरगोश, दूध की तरह सफेद खरगोश। सारा दिन इधर उधर फुदकता रहता वह नन्हा खरगोश, प्यारा प्यारा खरगोश।

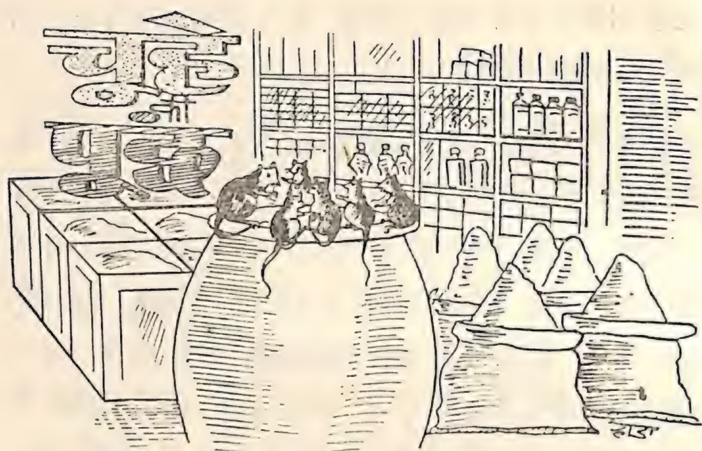
एक प्रातः वह सैर के लिये काफी दूर निकल गया। उधर ही एक लोमड़ी भी आ निकली। अब तो नन्हा खरगोश मुश्कल में फँस गया। लोमड़ी उसके पीछे भागी और वह आगे आगे। जब लोमड़ी बहुत निकट आ गई तो उसे बड़ा भय हुआ। अब तो मैं पकड़ा जाऊंगा और यह दुष्ट मुझे खा लेगी। तुरंत उसके मन में एक तरकीब सूझी, वह एक बड़ी झाड़ी के गिर्द भागने लगा। वह

आगे आगे और लोमड़ी पीछे पीछे। वह झाड़ी के गिर्द चक्कर काटता जाये और लोमड़ी भी। दोनों पसीने से तर और थक कर चूर हो गये।

इतने में खरगोश को समीप ही एक दूसरी झाड़ी के नीचे एक सुराख नज़र आया। वह एक ही छलांग में उछलकर उसमें घुस गया। लोमड़ी ने भी पूरा जोर लगा कर उसके पीछे छलांग लगाई। वह तो बेचारी फँस गई उस झाड़ी के कांटों में और उनमें बुरी तरह उलझ गई। झाड़ी के नीचे बिल में से दो नन्हीं नहीं आंखें काँटों में टंगी लोमड़ी को ओर देख रहीं थीं। क्रोध में लोमड़ी कह रही थी; "बदमाश, भोली भाली सूरत बनाये अहिंसा का दम भरता है और मेरे साथ इतने तीखे शस्त्रों से लड़ाई करता है, दुष्ट हिंसात्मक हथियारों का प्रयोग करने वाला।"

लोमड़ी अभी अपना भाषण समाप्त न कर पाई थी कि खरगोश चुपके से बिल में से खिसका और दूर एक टेकरी पर बैठ कर कहने लगा, "अहा ! कितनी चपल वाणी है तुम्हारी, बी लोमड़ी ! उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। अच्छा नमस्ते, फिर मिलेंगे।"

——



एक था चूहा। वह डिप्टी कमिश्नर साहिब की कोठी में रहता था। इसलिए कोई बड़ी बात नहीं कि वह अपने आप को अन्य मूषक भाईयों से बहुत बड़ा समझता। जिलाधीश तो थे ही जिलाधीश; वह अपने आप को चूहों का जिलाधीश समझता था। धीरे धीरे इस विचार के परिणाम स्वरूप उसके मन में झूठा अभिमान भरता गया, वह बड़ा घमण्डी चूहा बन गया।

अब वह अपने आप को अन्य चूहों से अलग समझता था, परंतु था वह सब प्रकार से अन्य चूहों जैसा ही एक

चूहा। जैसा उनका मुँह वैसा ही उसका मुँह, जैसी उनकी पतली मूंछ वैसी उसकी, जैसे उनकी लम्बी पूंछ वैसी ही उसकी भी। उसने निश्चय किया कि वह अपना बाहरी आडम्बर दूसरों से कुछ भिन्न बनाये। अतः उसने अपनी सुन्दर लम्बी पूंछ को विदा करने की ठानी और बड़े प्रयत्न के बाद अपने निश्चय में सफल हो गया।

चूहों का जिलाधीश अब ठीक अन्य चूहों जैसा न था, वह औरों से भिन्न था, वह एक लंडोरा चूहा बन गया था। अपनी विशेषता को औरों पर प्रकट करने तथा अपने बड़प्पन का रोब डालने के लिए वह अपनी कोठी से निकल दूर दूर अन्य मूषक बस्तिओं में दौरे पर जाने लगा। छोटे मोटे सब चूहे उसका आदर करते और अपना राजा मानते।

एक दिन इसी प्रकार दौरा करते हुए वह चूहों के एक ऐसे नगर में गया जो कि एक बनिए की दुकान की छत में बसा हुआ था। वह स्थान तो एक प्रकार का स्वर्ग था। बनिये की दुकान में क्या कुछ नहीं होता ?

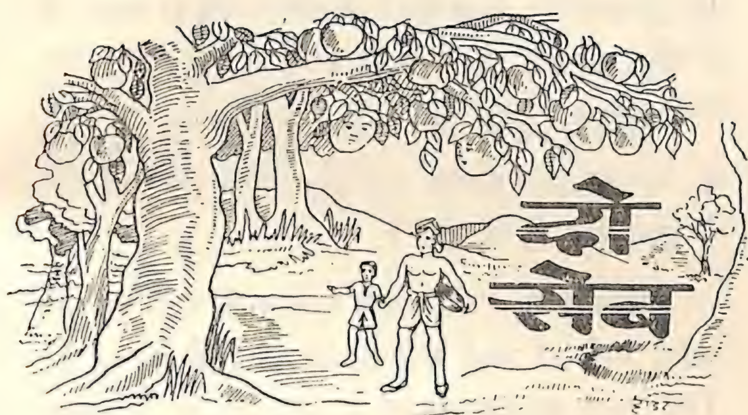
चूहों के जिलाधीश रात भर के लिये उसी नगर में रुक गये, चूहों ने सम्मान में रात को एक बड़ी पार्टी का आयोजन किया, पार्टी थी बनिये की दुकान में आधी रात के समय। आधी रात हुई तो सब महमान प्रधान अतिथि के

साथ दुकान में जा उतरे और मनमानी मौज उड़ाने लगे। बड़े बड़े अतिथि प्रधान अतिथि के साथ तेल के एक बड़े मटके के ऊपर चारों ओर डट कर बैठ गये, और लगे तेल में सब पूंछे भिगो भिगो कर चाटने। परंतु चूहों के जिला-धीश की तो पूंछ ही नहीं थी, करे तो क्या करे।

उसने होठों से ही पीने का निश्चय किया, और झुका मटके में रखे तेल की ओर, और गिरा धड़ाम से सिर के बल ऐन तेल से भरे हुए मटके में।

अगले दिन प्रातः जब बनिये ने दुकान खोली तो चूहों के जिलाधीश को तेल के मटके में सदा की नींद सोये हुए पाया। झूठे घमण्ड तथा व्यर्थ पाखण्ड का यही परिणाम होता है।

——



सेब के एक पेड़ पर दो बड़े-बड़े सेब लगे थे। दोनों ही बड़े हृष्ट-पुष्ट थे। हरिये का रंग कुछ २ हरा था और लालु तो पक कर चुनार की तरह लाल हो गया था।

लालु बोला, "ओ हरिये के घोड़े, इतने अकड़ कर क्यों बैठे हो"। हरिया कुछ नहीं बोला।

लालु ने फिर कहा," अबे, बोलते क्यों नहीं; क्या साँप सूंघ गया तुम्हें" ? हरिये ने उत्तर दिया, "भाई, मैं तो मौन तपस्या में मग्न हूँ; क्यों तंग कर रहे हो, अपना काम करो।"

लालु ने कहा, "खाक है तुम्हारी तपस्या; अभी तुम्हें पता ही क्या है; अभी कच्चे के कच्चे वैसे ही लटक रहे हो और अक्ल के भी कच्चे हो।"

हरिये ने उत्तर दिया, "ठीक है, मैं कच्चा हूँ; ठीक है, मेरी तपस्या अभी पूरी नहीं हुई; परन्तु तुम क्यों क्रोध से लाल पीले हो रहे हो" ?

लालु बोला, "की न वही मूर्खों वाली बात; यह मेरी लाली गुस्से की लाली नहीं है; यह तो है मेरे तप का तेज जिस तपस्या का अब तुम क ख पढ़ रहे हो मैं उसका उपसंहार लिख चुका हूँ; समझते क्या हो"। हरिया बोला, "व्यर्थ के क्यों ऐंठ रहे हो, कुछ ही दिनों भगवान् की कृपा से मुझे भी तुम जैसा तप और तेज़ प्राप्त हो जावेगा।"।

"अरे, कहाँ राजा भोज और कहां गँगु तेली," लालु ने वार किया।

इतने में एक टोकरी लिए हुए माली आया और उसने पहले तो लालु की गर्दन नापी और उसे साथ ही खड़े अपने लड़के को खाने को दे दिया, फिर हरिए को शाखा पर से उतारा और उसे टोकरी में डाल लिया जिसमें कुछ और हरे सेब भी चटनी बनाने के लिए रखे हुए थे।

व्यर्थ का ऐंठना और घमण्ड करना मूर्खता का चिह्न है। काल के सामने हर कोई बराबर है। पता नहीं हरिये और लालु की भान्ति हम मूर्ख मनुष्य भी क्यों आपस में फ़जूल झगड़ते रहते हैं। शायद हम उस समय अपने बाग के माली को भूल जाते हैं।





एक था बन्दर। एक दिन उसे कहीं से फटी पुरानी पुस्तक मिल गई। वह उसे घर ले आया। उस पुस्तक की प्राप्ति मात्र से वह अपने आप को एक बहुत बड़ा विद्वान् समझने लगा। उसके दिमाग का तो ठिकाना ही न रहा। वह अन्य बन्दरों पर खाली रोब जमाता था; वे भी इसकी चालाकी में आ गये और इसे महापंडित कह कर पुकारते थे।

धीरे-धीरे उसका अभिमान बढ़ा और वह विधाता की विभूतियों पर भी टीका टिप्पणी करने लगा। जैसे अपनी

कृतियों के गुण दोष मालूम करने के लिये भगवान् ने उसे ही नियुक्त किया हो।

एक दिन वह यात्रा के लिये घर से निकला। मार्ग में बहुतेरी चीजें देखने लायक थीं; परन्तु वह हर एक के प्रति कुछ न कुछ असन्तोष ही प्रकट करता। पानी की झील को देखकर कहने लगा, "इसमें भी क्या बुद्धिमानी है कि एक ही स्थान पर इतना पानी इकट्ठा किया है और अन्य स्थानों पर एक बून्द पीने को भी नहीं मिलती।

थोड़ी दूर आगे गया तो तरबूज का एक खेत था और बेलों के साथ बहुत बड़े-बड़े तरबूज पृथ्वी पर लेटे पड़े थे। विद्या-विशारद बन्दर बोला, "वाह, यह भी क्या मखौल है कि इतनी सी पतली और छोटी बेल को इतना मोटा और भारी फल? आखिर विधाता को पर्वताकार वृक्ष नहीं दीखे क्या; तरबूज उनमें क्यों नहीं लगा दिये"। इत्यादि।

रास्ता चलते-चलते बहुत थक गया था; चलो थोड़ी देर विश्राम कर लें—ऐसा सोचकर वह बड़ के एक विशाल वृक्ष की छाया में लेट गया। उसने मन ही मन फिर सोचा, "लो, इतने बड़े वृक्ष को छोटा-छोटा गोलक फल लगा हुआ है यहां लटकने चाहिये थे तरबूज"। इतने में

ही चट से एक छोटी सी गोलक ऊपर से टपकी और लगी बन्दर की नाक पर। खैर कोई चोट वोट नहीं आई उसे।

अब उसे ज्ञान हुआ कि विधाता की सब छोटी बड़ी कृतियों में कोई न कोई गूढ़ रहस्य अवश्य है; यदि गोलक के स्थान पर तरबूज उसकी नाक पर आ टपकता तो उसकी नाक की चटनी ही न बन जाती क्या? उसे बोध हो गया कि थोथे ज्ञान के आधार पर विद्या-सागर कहलाना मूर्खता है।

ऐसी ही मूर्खता बहुत बार हम भी किया करते हैं। मूर्ख कौन है? हम; विधाता या उसकी रहस्यमयी विभूतियां नहीं।

—

बाघ और बगुला



घने जंगल में घर था एक बाघ का। वह नित्यप्रति आवश्यकता-अनुसार शिकार करता और मौज उड़ाता। जिसकी चाहता गर्दन नापता, जिसे चाहता जा दबोचता, फलतः, वन में रहने वाले छोटे-मोटे प्राणी उसके भय से व्याकुल रहते।

एक दिन वह दोपहर का खाना खा रहा था कि बाघ के गले में एक हड्डी बहुत बेढब तरीके से फंस गई। अब तो बेचारे का भीतर का दम भीतर और बाहिर का बाहिर। उसने गीदड़ को सन्देश भेजा कि वह जंगल भर में मुनादी कर दे—

"जो कोई बाघ महाराज के गले से फंसी हुई हड्डी निकालेगा उसे भारी इनाम दिया जाएगा।"

जंगल में रहने वाले वैद्य हकीम सब सोच में पड़ गये। इनाम कौन नहीं पाना चाहता। परन्तु बाघ के मुंह के समीप जाने का साहस कोई करे तो। और, इधर बाघ की विपदा तो बाघ ही जानता था।

कुछ जीवों ने कहा—"मरता है तो मरने दो; हमारे साथ कौन-सी नेकी की है इसने; आज तक खून ही तो पिया है........हमारा,"

"पर भाई, इनाम भारी है; और मुसीबत में किसी की सहायता करना परोपकार ही है"—बगुला भगत बोले।

"दुश्मन की नहीं, अपने प्राणों के वैरी की कदापि नहीं"—सयाना गीध बोला।

"जो तुम्हारे लिए कांटा बोये, तुम उसके लिए फूल बोओ"—भगत जी ने शिक्षा देते हुए कहा।

वास्तव में तो था, बगुला भगत को इनाम का लालच। अन्य मित्रों के मना करने पर भी वह उड़ा और जा पहुंचा कराह रहे बाघ के पास। अपनी बारीक चोंच को पृथ्वी पर टेक कर बगुले ने फर्शी सलाम किया और कहा—"दास उपस्थित है; आपकी सेवा का अवसर मिला

सो तो मेरा अहोभाग्य है ही; साथ-साथ इनाम की कृपा भी होगी हजूर की ओर से....लाइये...."। बाघ ने मुंह खोल दिया !

बगुले ने अपनी लम्बी, पतली गर्दन को और भी लम्बा किया, चोंच को आगे बढ़ाया और उतार दिया उसे बाघ के हल्क में जहां हड्डी फँसी थी। हड्डी को चोंच में दृढता से पकड़ उसने तुरन्त ही खैंच बाहिर निकाल दिया।

बाघ बहुत प्रसन्न हुआ; बगुला भी खुश था। "मेरा इनाम...." उसने अत्यन्त नम्रता से कहना आरम्भ किया।

"अवश्य, अवश्य...किन्तु गले में अभी एक और टुकड़ा शेष है; तनिक उसे भी देख ही लें...."

"अवश्य, अवश्य...." फूल कर कुप्पा होते हुए बगुला भगत बोला।

बाघ ने मुंह खोला; बगुले ने गर्दन और चोंच बाघ के हल्क में उतारी। बाघ ने झट मुंह भींच लिया; बगुले का धड़ पृथ्वी पर था; गर्दन और चोंच गायब थे।

दुष्टों से सदा सतर्क रहने की शिक्षा बगुले को बहुत मंहगी पड़ी।



दोपहरी का सूर्य आसमान पर पूरे तेज से चमक रहा था। धूप थी कि चराचर को मानो भस्म कर रही थी। पगडण्डी के किनारे खड़ा पीपल का बूढ़ा वृक्ष सूर्यदेव के कोप को सह रहा था और उसके पत्तों की सुखद छाया में अनेक पक्षी आराम से बैठे दोपहरी काट रहे थे। एक महापुरुष की भाँति स्वयं दुःख सह कर औरों को सुख दे रहा पीपल का वह वृक्ष बहुत ही भला प्रतीत हो रहा था।

गर्मी से सताया हुआ और यात्रा की थकान से हाँपता हुआ एक चूहा आकर बूढ़े पीपल के चरणों में

बैठ गया। वृक्ष की घनी छाया में कुछ ही क्षण विश्राम करने के पश्चात् मूषक की जान में जान आई। उसने मन ही मन सोचा—"आह! कितना सुन्दर स्थान है यह; आकाश की नीली छतरी के नीचे यह वृक्ष की हरी छतरी जो धूप और वर्षा से रक्षा कर सकती है; मैं तो यों ही ऊसर खेतों में मारा-मारा फिरता रहा।" चूहे ने एक बार चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, वृक्ष की ओर देखा, वृक्ष पर के पक्षियों के कलरव को सुना और बस हो रहा वहीं का। लोग पीपल की पूजा करते हैं, उसकी जड़ों में पानी डालते हैं और जौ तथा धान आदि बिखेरते हैं, जिन्हें समीप में रहने वाले पक्षी और कीट खाते हैं। जब चूहे की दृष्टि पीपल के पाँव में बिखरे हुए अनाज के दानों पर पड़ी तो उसका जी और ललचाया—"वाह! यह तो स्वर्ग का ही एक टुकड़ा है। यहां रोटी भी है, कोठी भी है, और हींग लगे न फटकड़ी।"

धीरे-धीरे पीपल की जड़ों में चूहे ने अपनी कुटिया बना ली। रात के समय जब सब पक्षी सो जाते तो केवल चूहे की कुटिया से चरमर-चरमर का स्वर आता। कभी-कभी तो यह स्वर सारी रात चलता। धीरे-धीरे चूहे ने पीपल की जड़ों में एक बहुत लम्बा-चौड़ा बिल खोद डाला

और उसमें आकर रहने लगे धूर्त चूहे कुछ अन्य सगे-सहोदर। फिर क्या था; चूहों का परिवार बढ़ा और धीरे-धीरे चूहों की एक बस्ती ही तो बस गई वहां।

कभी-कभार कई सयाने पक्षी चरमर का स्वर सुनकर चौकस हो जाते—"आखिर यह मामला क्या है?" चूहों का परिवार और बढ़ा; चूहों की चरमर और बढ़ी; और बूढ़े पीपल की दृढ नींव और खोखली हुई।

एक रात बहुत वेग की आन्धी आई; पक्षियों ने मारे भय के कोलाहल मचा दिया; आन्धी कहती थी—"वृक्ष क्या आज पहाड़ उखड़ेंगे।" चारों ओर उथल-पुथल थी; पक्षियों के घोंसले गिर रहे थे, बच्चे विलख रहे थे, हाहाकार मचा हुआ था; बिजली चमक रही थी, बादल गर्ज रहे थे और चूहे अपनी बस्ती में आराम की नींद सो रहे थे।

एकाएक तूफान का वेग स्वयं बूढ़े पीपल के लिए असहनीय हो गया और अगले ही क्षण ऊन्धे मुँह पृथ्वी पर लोट पड़ा। चूहे चैन की नींद सो रहे थे यद्यपि बूढ़े पीपल के सर्वनाश के मूल कारण वे थे।

दुष्टों को शरण देने से सज्जन बहुधा अपने-आप को कष्ट में डाल लेते हैं।





एक बकरी और एक मछली में गहरी मित्रता हो गई। मछली का निवास एक छोटी सी सरिता में था, बकरी अपने मालिक के यहां समीप वाले मकान में रहती थी। बकरी दिन भर स्वच्छन्द विचरती, वन के फूल-पात खाती और सन्ध्या-समय घर लौट आती! मछली अपने जलमय संसार में क्रीडा-मग्न रहती, लहरों से खेलती और सन्तोष का जीवन काटती। बकरी नित्य दो-एक बार सरिता पर जाती जलपान करने; इसी सम्पर्क से तो मछली की और उसकी दोस्ती हुई थी।

कभी-कभी दोनों सहेलियों में देर तक वार्तालाप भी

चलता । बकरी अपनी दिनचर्या बखानती, मछली जलपान की कथाएँ सुनाती । कभी-कभी बकरी अपनी सहेली के लिए फल-फूल उपहार के रूप में लाती जिन्हें पाकर वह बहुत प्रसन्न होती, कभी जामुन, कभी गोलक, कभी बेर, कभी रसभरी, कभी अंगूर, कभी भुट्टा, कभी चावल ।

मछली कहा करती—"बहिन, तू तो स्वर्गलोक में रहती है जहां ऐसे मनोहर फल और दूसरे पदार्थ हैं, मेरी दुनियां में तो केवल जल ही जल है, जल में पत्थर हैं, रेत है, काई है" ।

बकरी कहती—"ठीक है बहिन, पर मेरा जीवन सुखी नहीं है; मैं दास हूं, मेरा स्वामी एक चरवाहा है । वह मेरा दूध मेरे बच्चों से छीन कर अपना पेट पालता है, कभी-कभी तो स्वयं मेरे नन्हें मुन्हों को भी निगल जाता है । तू तो इधर स्वच्छन्द है, स्वतन्त्र है, न कोई स्वामी, न तू किसी की दास । तुझे न चिन्ता न भय ।"

मछली कहती—"न बहिन, मुझे अपने जीवन से सन्तोष नहीं है । कहां यह तरल जल और चौबीसों घण्टे इसी की सैर, कहां तुम्हारी दुनिया की मनोहर छटा,—फल, फूल, पौदे, वृक्ष, खेत, खलिहान, ढोर, बैल, बाजे-गाजे और आनन्द के साधन ।"

अपनी जननी जन्मभूमि को छोड़ने का निश्चय मूर्ख मछली के मन में पक्का ही तो हो गया। सन्तोष के अभाव से वह भूल गई अपना घर, अपना देश और अपनी जन्म-भूमि और चल दी बकरी के साथ बकरी की आकर्षक दुनियां में रहने।

नदी-तट से दो-चार कदम बाहिर ही नर्म-गर्म रेत पर मूर्ख मछली छटपटा रही थी; इसकी सहेली लाचार हो उसके अन्तिम क्षणों को देख रही थी।

—



एक थी चुहिया;—भोली-भाली सूरत, नन्हा मुन्हा नर्म-नर्म मटियाला शरीर। अपने माता-पिता के संग वह एक मकान की पिछली कोठरी में रहती थी। कोठरी क्या थी एक लघु स्वर्ग ही तो था; धान, दाल, चीनी तथा अन्य खाद्य पदार्थों का पूर्ण भण्डार था वह, जिस पर चूहों का परिवार मनमानी मौज उड़ाता। चुहिया का नाम था कजली, रंग जो उसका काजल जैसा था।

एक दिन कजली के माता पिता घर से बाहिर थे। वे किसी सम्बन्धी से मिलने साथ वाले मुहल्ले में गये हुए थे। दोपहर ढल चुकी थी और कजली की कुटिया में तो सायंकाल का अन्धकार था। चुहिया

बिटिया घर में अकेली और उदास बैठी चीनी की एक डलिया चूस कर मन बहला रही थी। "मां तो कहती थी मैं शीघ्र ही लौट आऊँगी"––उसने मन ही मन में कहा। इतने में बिल के द्वार पर धीमी-धीमी दस्तक हुई। हर्ष और भय से मिले स्वर में पूछा—"कौन"? "बि··· टि···या···," बड़ी ही मोहक मधुर वाणी में द्वार पर से कोई बोला। "माँ" कजली बोली। "बिटिया···बिटिया ····" फिर आवाज आई। "यह तो माँ का स्वर नहीं है।" कजली ने सोचा। "माँ घर पर नहीं––' उसने डरते-डरते उत्तर दिया और सिकुड़ कर बिल के एक कोने से चिमट गई। तनिक ध्यान से ऊपर की ओर अपने बिल के द्वार पर उसने देखा तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। चमकती हुई दो उत्सुक आँखें अपनी ओर बुला रहीं थीं।

कुछ क्षण बीते और फिर आवाज आई—"कजली! ···बाहिर आओ!·····मैं तुम्हारी मौसी हूँ।" "मेरी मौसी?" कजली ने सोचा। माँ जाते समय उसे घर से बाहिर निकलना मना कर गई थी। वह तो चिन्ता में डूब गई।

"बिटिया, मैं तुम्हारे लिए नाना प्रकार के स्वादु व्यञ्जन लाई हूं, मैं जाती हूं तुम उठा ले जाना, फिर किसी दिन आऊँगी जब तुम्हारी माँ भी घर पर ही होगी ....।" चुहिया के देखते-देखते और इस वाक्य के समाप्त होते ही वह चमकती आंखें अदृश्य हो गईं। थोड़ी देर और कजली सोच में पड़ी रही, बाहिर जाकर देख तो आऊँ। नहीं नहीं, माँ ने मना किया है। और फिर ऊँह माँ तो ऐसे ही मुझ पर रोक लगाती रहती है, अब मैं कोई बच्ची हूं?......आदि, आदि।

अहंकार ने कजली की बुद्धि मन्द कर दी और उत्साह दुगुना। वह अपनी अज्ञात मौसी के लाए हुए व्यञ्जन देखने की लालसा ले झट बिल से बाहिर निकली और झट उस पर झपटी धूर्त मौसी,—बिल्ली। कजली बेचारी दम भी तो न मार सकी।

बड़ों की शिक्षा का उल्लंघन क्यों किया जाए।

